ऋषिभाषित में प्रस्तुत चार्वाक दर्शन

प्राचीन जैन आगमों में चार्वाकदर्शन की तार्किक प्रतिस्थापना और तार्किक समीक्षा हमें सर्वप्रथम ऋषिभाषित (ई.पू. चौथी शती) में ही मिलती है उसके पश्चात् सूत्रकृतांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध (ई.पू. प्रथम शती) में तथा राजप्रश्नीय (ई.पू. प्रथम शती) में मिलती है। ऋषिभाषित का बीसवाँ "उक्कल" नामक सम्पूर्ण अध्ययन ही चार्वाक दर्शन की मान्यताओं के तार्किक प्रस्तुतीकरण से युक्त है। चार्वाकदर्शन के तज्जीवतच्छरीरवाद का प्रस्तुतीकरण इस ग्रन्थ में निम्न प्रकार से हुआ है -

"पादतल से ऊपर और मस्तक के केशाग्र से नीचे तक के सम्पूर्ण शरीर की त्वचापर्यन्त जीव आत्मपर्याय को प्राप्त हो जीवन जीता है और इतना ही मात्र जीवन है। जिस प्रकार बीज के भुन जाने पर उससे पुनः अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार शरीर के दग्ध हो जाने पर उससे पुनः शरीर (जीवन) की उत्पत्ति नहीं होती। इसीलिए जीवन इतना ही है (अर्थात् शरीर की उत्पत्ति से विनाश तक की कालावधि पर्यन्त ही जीवन है) न तो परलोक है, न सुकृत और दुष्कृत कर्मों का फल विपाक है। जीव का पुनर्जन्म भी नहीं होता। पुण्य और पाप जीव का संस्पर्श नहीं करते और इस तरह कल्याण और पाप निष्फल है।" ऋषिभाषित में चार्वाकों की इस मान्यता की समीक्षा करते हुए पुनः कहा गया है कि "पादतल से ऊपर तथा मस्तक के केशाग्र से नीचे तक के शरीर की सम्पूर्ण त्वचापर्यन्त आत्मपर्याय को प्राप्त ही जीव है, यह मरणशील है, किन्तु जीवन इतना ही नहीं है। जिस प्रकार बीज के जल जाने पर उससे पुनः उत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार शरीर के दग्ध हो जाने पर उससे पुनः उत्पत्ति नहीं होती। इसलिए पुण्य-पाप का अग्रहण होने से सुख-दुःख की सम्भावना का अभाव हो जाता है और पाप कर्म के अभाव में शरीर के दहन से या शरीर के दग्ध होने पर पुनः शरीर की उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् पुनर्जन्म नहीं होता।" इस प्रकार व्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर लेता है। यहाँ हम देखते हैं, कि ग्रन्थकार चार्वाकों के अपने ही तर्क का उपयोग करके यह सिद्ध कर देता है कि पुण्य-पाप से ऊपर उठकर व्यक्ति पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति पा लेता है।

इस ग्रन्थ में चार्वाक दर्शन के सन्दर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें कर्म सिद्धान्त का उत्थापन करने वाले चार्वाकों के पाँच प्रकारों का उल्लेख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ है और ये प्रकार अन्य दार्शनिक ग्रन्थों में मिलने वाले देहात्मवाद, इन्द्रियात्मवाद, मन:आत्मवाद आदि प्रकारों से भिन्न हैं और सम्भवत: अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होते। इसमें निम्न पाँच प्रकार के उक्कलों के उल्लेख हैं - दण्डोक्कल, रज्जूक्कल, स्तेनोक्कल, देशोक्कल और सव्वुक्कल। इस प्रसंग में सबसे पहले तो यही विचारणीय है कि 'उक्कल' शब्द का वास्तविक अर्थ क्या हैं? प्राकृत के 'उक्कल' शब्द को संस्कृत में निम्न चार शब्दों से निष्पन्न माना जा सकता है- उत्कट, उत्कल, उत्कुल और उत्कूल। संस्कृत कोशों में 'उत्कट' शब्द का अर्थ उन्मत्त दिया गया हैं। चूँकि चार्वाक दर्शन अध्यात्मवादियों की दृष्टि में उन्मत्तों का प्रलाप था अत: उसे उत्कट (उन्मत्त) कहा गया हैं। मेरी दृष्टि में उक्कल का संस्कृत रूप उत्कट मानना उचित नहीं है। उसके स्थान पर उत्कल, उत्कुल या उत्कूल मानना अधिक समीचीन है। उत्कल का अर्थ है जो निकाला गया हो, इसी प्रकार 'उत्कुल' शब्द का तात्पर्य है जो कुल से निकाला गया है या जो कुल से बहिष्कृत है। चार्वाक आध्यात्मिक परम्पराओं से बहिष्कृत माने जाते थे, इसी दृष्टि से उन्हें उत्कल या उत्कुल कहा गया होगा।

यदि हम इसे उत्कूल से निष्पन्न मानें तो इसका अर्थ होगा किनारे से अलग हटा हुआ। "कूल" शब्द किनारे अर्थ में प्रयुक्त होता है, अर्थात् जो किनारे से अलग होकर अर्थात् मर्यादाओं को तोड़कर अपना प्रतिपादन करता है वह उक्कूल है। चूँकि चार्वाक मर्यादाओं को अस्वीकार करते थे अत: उन्हें उत्कूल कहा गया होगा। अब हम इन उक्कलों के पाँच प्रकारों की चर्चा करेंगे -

दण्डोक्कल

ये विचारक दण्ड के दृष्टान्त द्वारा यह प्रतिपादित करते थे कि जिस प्रकार दण्ड अपने आदि, मध्य और अन्तिम भाग से पृथक् होकर दण्ड संज्ञा को प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार शरीर से भिन्न होकर जीव, जीव नहीं होता है। अत: शरीर के नाश हो जाने पर भव अर्थात् जन्म-परम्परा का भी नाश हो जाता है। उनके अनुसार सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर जीव जीवन को प्राप्त होता है। वस्तुत: शरीर और जीवन की अपृथकता या सामुदायिकता ही इन विचारकों की मूलभूत दार्शनिक मान्यता थी। दण्डोक्कल देहात्मवादी थे।

रज्जूक्कल

रज्जूक्कलवादी यह मानते हैं कि जिस प्रकार रज्जु तन्तुओं का स्कन्ध मात्र है उसी प्रकार जीवन भी पंचमहाभूतों का स्कन्ध मात्र है। उन स्कन्धों के विच्छिन्न होने पर भव-सन्तति का भी विच्छेद हो जाता है। वस्तुत: ये विचारक पंचमहाभूतों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के समूह को ही जगत् का मूल तत्त्व मानते थे और जीव को स्वतंत्र तत्त्व के रूप में स्वीकार नहीं करते थे। रज्जूक्कल स्कन्धवादी थे।

स्तेनोक्कल

ऋषिभाषित के अनुसार स्तेनोक्कल भौतिकवादी अन्य शास्त्रों के दृष्टान्तों को लेकर उनकी स्वपक्ष में उद्‌भावना करके यह मानते थे कि हमारा भी यही कथन है। इस प्रकार ये दूसरों के सिद्धान्तों का उच्छेद करते हैं। परपक्ष के दृष्टान्तों का स्वपक्ष में प्रयोग का तात्पर्य सम्भवत: वाद-विवाद में 'छल' का प्रयोग हो। सम्भवत: स्तेनोक्कल या तो नैयायिकों का कोई पूर्व रूप रहा हो या संजयवेलट्ठीपुत्र के सिद्धान्त का यह प्राचीन कोई विधायक रूप था, जो सम्भवत: आगे चलकर अनेकान्तवाद का आधार बना हो। ज्ञातव्य है कि ऋषिभाषित में देहात्मवादियों के तर्कों से मुक्ति की प्रक्रिया का प्रतिपादन किया है।

देशोक्कल

ऋषिभाषित में जो आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करके भी जीव को अकर्ता मानते थे, उन्हें देशोक्कल कहा गया है। आत्मा को अकर्ता मानने पर पुण्य-पाप, बन्धन-मोक्ष की व्यवस्था नहीं बन पाती। इसलिए इस प्रकार के विचारकों को भी आंशिक रूप से उच्छेदवादी ही कहा गया है, क्योंकि पुण्य-पाप, बन्धन-मोक्ष आदि का निरसन करने के कारण ये भी कर्मसिद्धान्त, नैतिकता एवं धर्म के अपलापक ही थे। अत: इन्हें भी इसी वर्ग में समाहित किया गया था।

सम्भवत: ऋषिभाषित ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो आत्म-अकर्तावादियों को उच्छेदवादी कहता है। वस्तुत: ये सांख्य और औपनिषदिक वेदान्त के ही पूर्व रूप थे। जैन उन्हें उत्कूल या उच्छेदवादी इसलिए मानते थे कि इन मान्यताओं से लोकवाद (लोक की यथार्थता) कर्मवाद (कर्म सिद्धान्त) और आत्मकर्तावाद (क्रियावाद) का खण्डन होता था।

सव्वुक्कल

सर्वोत्कूल सर्वदा अभाव से ही सबकी उत्पत्ति बताते थे। ऐसा कोई भी तत्त्व नहीं है जो सर्वथा सर्व प्रकार से सर्वकाल में रहता हो, इस प्रकार ये सर्वोच्छेदवाद की संस्थापना करते थे। दूसरे शब्दों में जो लोग समस्त सृष्टि के पीछे किसी नित्य तत्त्व को स्वीकार नहीं करते थे और अभाव से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानते थे, वे कहते थे कि कोई भी तत्त्व ऐसा नहीं है जो सर्वथा और सर्वकालों में अस्तित्व रखता हो। संसार के मूल में किसी भी सत्ता को अस्वीकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने के कारण ये सर्वोच्छेदवादी कहलाते थे। सम्भवतः यह बौद्ध ग्रन्थों में सूचित उच्छेदवादी दृष्टि का कोई प्राचीनतम रूप था जो तार्किकता से युक्त होकर बौद्धों के शून्यवाद के रूप में विकसित हुआ होगा।

इस प्रकार ऋषिभाषित में आत्मा, पुनर्जन्म, धर्म-व्यवस्था एवं कर्म सिद्धान्त के अपलापक विचारकों का जो चित्रण उपलब्ध होता है उसे संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है-

१. ग्रन्थकार उपरोक्त विचारकों को "उक्कल" नाम से अभिहित करता है जिसके संस्कृत रूप उत्कल, उत्कुल अथवा उत्कूल होते हैं। जिनके अर्थ होते हैं बहिष्कृत या मर्यादा का उल्लंघन करने वाला। इन विचारकों के सम्बन्ध में इस नाम का अन्यत्र कहीं प्रयोग हुआ है, ऐसा हमें ज्ञात नहीं होता।

२. इसमें इन विचारकों के पांच वर्ग बताये गये हैं - दण्डोत्कल, रज्जूत्कल, स्तेनोत्कल, देशोत्कल और सर्वोत्कल। विशेषता यह है कि इसमें स्कन्धवादियों (बौद्ध स्कन्धवाद का पूर्व रूप) सर्वोच्छेदवादियों (बौद्ध शून्यवाद का पूर्व रूप) और आत्म-अकर्तावादियों (अक्रियावादियों-सांख्य और वेदान्त का पूर्व रूप) को भी इसी वर्ग में सम्मिलित किया गया है। क्योंकि ये सभी तार्किक रूप से कर्म सिद्धान्त एवं धर्म व्यवस्था के अपलापक सिद्ध होते हैं। यद्यपि आत्म-अकर्तावादियों को देशोत्कल कहा गया है अर्थात् आंशिक रूप से अपलापक कहा गया है।

३. इसमें शरीर पर्यन्त आत्म-पर्याय मानने का जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है, वही जैनों द्वारा आत्मा को देहपरिमाण मानने के सिद्धान्त का पूर्व रूप प्रतीत होता है। क्योंकि इस ग्रन्थ में शरीरात्मवाद का निराकरण करते समय इस कथन को स्वपक्ष में भी प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार इसमें जैन, बौद्ध और सांख्य तथा औपनिषदिक वेदान्त की दार्शनिक मान्यताओं के पूर्व रूप या बीज परिलक्षित होते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि इन मान्यताओं के सुसंगत बनाने के प्रयास में ही इन दर्शनों का उदय हुआ है।

४. इसमें जो देहात्मवाद का निराकरण किया गया है वह ठोस तार्किक आधारों पर स्थित नहीं है। मात्र यह कह दिया गया है कि जीव का जीवन शरीर की उत्पत्ति और विनाश की काल सीमा तक सीमित नहीं है। इससे यह फलित होता है कि कुछ विचारक जीवन को देहाश्रित मानकर भी देहान्तर की सम्भावना अर्थात् पुनर्जन्म की सम्भावना को स्वीकार करते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषिभाषित में उत्कटवादियों (चार्वाकों) से सम्बन्धित अध्ययन के अन्त में कहा गया है-

एवं से सिद्धे बुद्धे विरते विणावे दन्ते दविए अलं ताइ णो पुणरवि इच्चत्थं हव्वमागच्छति तिबेमि।

इस प्रकार वह सिद्ध, बुद्ध, विरत, निष्पाप, जितेन्द्रिय, करुणा से द्रवित एवं पूर्ण त्यागी बनता है और पुनः इस संसार में नहीं आता है, आदि कहा गया है। अतः देहात्मवादी होकर लोकायत दार्शनिक भौतिकवादी या भोगवादी नहीं थे वे भारतीय ऋषि परम्परा के ही अंग थे, जो निवृत्तिमार्गी, नैतिक दर्शन के समर्थक थे। वे अनैतिक जीवन के समर्थक नहीं थे - उन्हें विरत या दान्त कहना उनको त्यागमार्ग एवं नैतिक जीवन का सम्पोषक ही सिद्ध करना है।

वस्तुतः लोकायत दर्शन को जो भोगवादी जीवन का समर्थक कहा जाता है, वह उनकी तत्त्वमीमांसा के आधार पर विरोधियों द्वारा प्रस्तुत निष्कर्ष है। यदि सांख्य का आत्म-अकर्तावाद, वेदान्त का ब्रह्मवाद, बौद्धदर्शन का शून्यवाद और विज्ञानवाद तप, त्याग और सम्पोषक माने जा सकते हैं तो देहात्मवादी लोकायत दर्शन को उसी मार्ग का सम्पोषक मानने में कौन सी बाधा है। चार्वाक या लोकायत दर्शन देहात्मवादी या तज्जीवतच्छरीरवादी होकर नैतिक मूल्यों और सदाचार का सम्पोषक रहा है। वह इस सीमित जीवन को सन्मार्ग में बिताने का संदेश देता है, उसका विरोध कर्मकाण्ड से रहा है न कि सात्विक नैतिक जीवन से। यह बात ऋषिभाषित के उपरोक्त विवरण से सिद्ध हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org